ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 191-193

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश अदालतों द्वारा हिन्दू विधि के अनुसार वर्णक्रम निर्धारण के मानक के रूप में दत्तक ग्रहण (19वी–20वीं सदी के अदालती मुकदमों के विशेष संदर्भ में)

अभिषेक कुमार श्रीवास्तव
शोध अध्येता– इतिहास विभाग, डी.डी.यू गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ0प्र0), भारत

Received-19.09.2023, Revised-21.09.2023, Accepted-26.09.2023 E-mail: abhishek14520@gmail.com

सारांश: ***वर्णव्यवस्था सम्बंधी प्रश्न के संदर्भ में अदालत में दायर किए गए मुकदमें में शामिल प्रमुख मुद्दों में से एक दत्तक ग्रहण का मुद्दा भी था, जो शूद्र तथा एक द्विज वर्ण के बीच अंतर का एक प्रमुख आधार था। दोनो वर्णों के बीच दत्तक ग्रहण के अधिकार दत्तक पुत्र की अन्य पुत्रों के मध्य स्थिति तथा उसके अधिकार के सम्बंध में न्यायालयों द्वारा पर्याप्त छानबीन की गई तत्पश्चात व्यापक विचार–विमर्श तथा विद्वानों के निष्कर्ष के आधार पर यह पाया गया कि दत्तक ग्रहण के सम्बंध में अलग–अलग अधिकार द्विज तथा शूद्र वर्ण के बीच हिन्दू विधि के तहत निर्धारित किए गए थे। इस विषय पर विभिन्न अदालतों में दत्तक ग्रहण से सम्बंधित दायर मुकदमें उनके वर्ण–विषयक स्थिति के आधार पर थे और इस प्रकार के निर्धारण (वर्ण क्रम में) दत्तक पुत्र के वैधता के मामलों का सुलझाया गया। अदालत द्वारा वर्ण के निर्धारण के क्रम में दत्तक पुत्र के ग्रहण की योग्यता, अन्य पुत्रों के साथ उनके अधिकार, दत्तकहोम या अनुष्ठान आदि विषयों का अवलोकन (विभिन्न वर्णों के संदर्भ में) न्यायालय द्वारा किया गया इस प्रकार अदालत द्वारा दत्तक ग्रहण को भी वर्ण व्यवस्था के निर्धारण में एक मानक के रूप में स्वीकार किया गया।***

कुंजीभूत शब्द– वर्णव्यवस्था, दत्तक, आधार, अधिकार, यायालयों, व्यापक विचार–विमर्श, शूद्र वर्ण, वर्ण–विषयक, वैधता।

वैदिक धर्म के पालन के लिए तथा लौकिक अनुष्ठान के लिए पुत्र की उपस्थिति आवश्यक मानी गई है। धर्मशास्त्रकारों द्वारा औरस पुत्र को महत्वपूर्ण माना है परन्तु औरस पुत्र के अलावा अन्य बारह प्रकार के पुत्रों को भी मान्यता दी गई है जैसा कि मद्रास उच्च न्यायालय में आए एक मुकदमें में जो कि सुब्रहमण्यम अय्यर बनाम रत्नवेलु चेट्टी का था, इस मुकदमें में याज्ञवल्क स्मृति के एक श्लोक के अनुसार पुत्रों के 12 प्रकारों को स्वीकार किया गया था। यह भी कहा गया था कि औरस पुत्र नही होने की दशा में दत्तक पुत्र ही पैतृक सम्पत्ति का तथा धार्मिक और लौकिक कृत्यों का उत्तराधिकारी है।[1] इसी प्रकार जोगरनाथ गिर बनाम शेर बहादुर सिंह के एक मुकदमें में दत्तक पुत्र तथा अन्य पुत्रों के महत्व को इसी संदर्भ में स्वीकार किया गया है।[2] द्विज तथा शूद्र के मध्य दत्तक ग्रहण के लिए योग्यता के सम्बंध में नियम का निर्धारण विधि ग्रंथों में किया गया था, जैसा कि राजकुमार लाल बनाम बिसेसर दयाल के एक मुकदमें में अदालत द्वारा विधि ग्रंथों के आधार पर ही माना गया कि एक द्विज द्वारा अपने बहन के पुत्र का दत्तक ग्रहण अवैध है। इस सम्बंध में यह भी कहा गया कि तीन श्रेष्ठ वर्गों में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य में से किसी भी श्रेणी का सदस्य हिन्दू कानून के अनुसार अपने बहन के पुत्र को गोद नही ले सकता है।[3] इस संदर्भ में विभिन्न हिन्दू विधि पर आधारित ग्रंथों का भी सहारा लिया गया तथा उनमे एक द्विज वर्ग के लिए दत्तक ग्रहण से सम्बंधित कानून को निर्धारित किया गया। भगवान सिंह बनाम भगवान सिंह माइनर अण्डर द स्टेट के मुकदमें में भी कहा गया है कि तीन उच्चवर्णों में से एक बेटी के पुत्र एक बहन के पुत्र का दत्तक ग्रहण अमान्य है तो यह मौसी के पुत्र का दत्तक ग्रहण भी अमान्य तथा निष्क्रीय होगा।[4] सुब्बाराव हम्बीराव पाटिल बनाम राधा हम्बीराव पाटिल के मुकदमें में द्विजों के बीच इसी प्रकार के दत्तक ग्रहण की वैधता से सम्बंधित प्रश्न को उठाया गया था, जिसमें यह कहा गया था कि "तीन द्विज जातियों में बहन के पुत्र का दत्तक ग्रहण निषिद्ध तथा अमान्य है, जबकि शूद्रों के बीच यह मान्य है। विशेष प्रथा तथा रीतिरिवाज के अभाव में द्विजों के बीच इस तरह के दत्तक ग्रहण को अमान्य करार देना तथा इस तरह की मान्यता के लिए उनके कानूनी अधिकार के शर्तों या प्रथाओं पर निर्भर करता है।"[5]

19वीं सदी के इन मुकदमों से यह स्पष्ट है कि द्विज तथा शूद्र वर्ग के बीच दत्तक ग्रहण की योग्यता भी वर्ण सम्बंधित एक महत्वपूर्ण विभेद के रूप में माना गया है तथा इस आधार पर किसी व्यक्ति या समुदाय की पहचान (वर्ण–व्यवस्था में उसके स्थान) की गई है। न केवल दत्तक ग्रहण की योग्यता अपितु हिन्दू विधि के अनुसार दत्तक पुत्र की योग्यता, आयु, तथा दत्तक पुत्र के अधिकार भी वर्ण सम्बंधी पहचान के एक मानक के रूप में स्वीकार किया गया थां। मरियम्मल बनाम गोविंदम्मल और अन्य के मुकदमें में स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है। इस मुकदमें में गोद लेने के सम्बंध में कहा गया है कि दत्तक लिया जाने वाला व्यक्ति पुरूष होना चाहिए। उसे (दत्तक पुत्र को) दत्तक पिता की जाति से सम्बंधित होना चाहिए। ध्इस प्रकार एक ब्राह्मण किसी क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्र के पुत्र का दत्तक ग्रहण नही कर सकता, लेकिन वह अपने जाति के उपविभाग के पुत्र का दत्तक ग्रहण कर सकता है। वह लड़का ऐसा नही होना चाहिए जिसकी माता तथा दत्तक पिता के बीच विवाह सामान्य दशा में होना संभव न हो।[6]

परन्तु निषेध का यह नियम कई मामलों में पुत्री के पुत्र बहन के पुत्र और मौसी के पुत्र तक ही सीमित था। हालाँकि यह निषेध शूद्रों पर लागू नही था। तीन उच्च वर्णों के सम्बंध में यह माना गया कि इस नियम के प्रतिबंध के बावजूद यदि इसे किसी प्रथा द्वारा स्वीकृत किया गया हो तो वह मान्य होगा। इस सम्बंध में जॉन डी0 मायने का कहना है कि "दत्तक ग्रहण का नियम कुछ संस्कृत ग्रंथों और एक रूपक के रूप में विकसित हुआ है जो कि शौनकस्मृति का है जिसके अनुसार दत्तक लिया जाने वाला लड़का एक पुत्र का प्रतिबिम्ब होना चाहिए" कहा गया है। ये नियम मनु, वशिष्ठ, बौद्धायन शौनक और शाकल्य आदि ग्रंथों के है। शौनक द्वारा दत्तक ग्रहण की प्रथा का उल्लेख करते हुए जो कहा गया था उसका उल्लेख दत्तक चन्द्रिका में पृष्ठ संख्या 14 पर किया गया है जो इस प्रकार से है "एक पुत्र का प्रतिबिम्ब का अर्थ एक पुत्र के समान है।" दत्तक मीमांसा नामक ग्रंथ में इस सिद्धान्त को आगे बढ़ाते हुए कहा गया है कि "जाति में समान तथा स्नेही स्वभाव वाला वह पुत्र जिसे माता–पिता दोनों के द्वारा दिया गया है, दत्रिम या दत्तक

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

पुत्र के रूप में जाना जाता है।[7]

श्री बालासुगुरूलिंगस्वामी बनाम श्री बालासुरामलक्षम्मा के मुकदमें के निर्णय में भी माननीय न्यायधीश द्वारा भी इसी तरह का नियम ग्रहण किया गया था। मद्रास के अदालत के न्यायायिक समिति ने भी अपने एक निर्णय में मनुस्मृति (अध्याय–9, पृष्ठ संख्या 106) का उल्लेख करते हुए दत्तक ग्रहण के धार्मिक उद्देश्य की घोषणा भी की है। एक अन्य मुद्दा जो कि विभिन्न वर्णो के बीच दत्तक ग्रहण के वैधता के संदर्भ में अदालत में उठाया गया था वह यह था कि द्विज वर्गों में दत्तक ग्रहण तभी वैध है जब दत्तक यज्ञ का अनुष्ठान किया गया हो।[8] यह मामला राजकुमार लाल बनाम बिसेसर दयाल के मुकदमें में भी एक प्रश्न के रूप में उठाया गया था, साथ में एक अन्य मुकदमा जो गोविन्द प्रसाद बनाम रिंन्दाबाई का था। इस मुकदमें में यह कहा गया था कि दत्तक होम या अनुष्ठान ब्राह्मणों के बीच वैध दत्तक ग्रहण के लिए आवश्यक है और इसके उपराँत ही धार्मिक संस्कारों के प्रभाव को और उस समय के सम्बंध में दत्तक ग्रहण को पूर्ण माना जा सकता है। इस मुकदमें में कहा गया था कि "दत्तक ग्रहण को एक सामान्य लेन–देन, उपहार और स्वीकृति के रूप में देखने और सक्षम व्यक्तियों द्वारा इसे पूर्ण करने के लिए किया जाएगा।

यदि गोद लिए गए लड़के को एक परिवार से दूसरे परिवार में स्थानांतरित किया गया था तो इस दृष्टि से दत्तक होम या यज्ञ ब्राह्मणों के बीच आवश्यक है। इस प्रकार का लेन–देन तब तक वैध नही है जब तक कि यह एक धार्मिक संस्कार के साथ पूरा न किया जाए इस मुकदमें में यह भी कहा गया कि हालाँकि शूद्रों के मामले में इस प्रकार के दत्तक ग्रहण की वैधता की शर्तों को पूरा करने के लिए एक शर्त के साथ लड़के को देना और लेना ही तथा इस विषय में एक मात्र लेन देन के विलेख ही पर्याप्त माना गया।[9] एक अन्य मुकदमा जो बालगंगाधर तिलक बनाम श्री श्री निवास पण्डित दत्तक ग्रहण की वैधता के प्रश्न पर आधारित है इस मुकदमें में दत्तक यज्ञ के अनुष्ठान का सम्पादन न करने पर दत्तक ग्रहण को अवैध करार करने की अपील की गई थी इस मुकदमें में माननीय न्यायधीश द्वारा कहा गया कि "दत्तक होम या यज्ञ घी या मक्खन जलाने की क्रिया है जो धार्मिक प्रायश्चित या तर्पण के माध्यम से अग्नि द्वारा आहूति के रूप में अर्पित किया जाता है अर्थात प्रज्ज्वलित अग्नि में घी की आहूतियाँ दी जाती है। यह स्वीकार किया गया कि इस मामले में अनुष्ठान नही किया गया था और यह काफी हद तक स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह उन चीजों में से एक था जिसे बाद में पूना में एक सामान्य समारोह और उत्सव के हिस्से के रूप में किए जाने की इच्छा थी और जिसको वहाँ पर किया जाना था।.....यहाँ इस मुकदमे में एक प्रश्न इकलौते पुत्र के दत्तक ग्रहण करने की वैधता के संदर्भ में भी था।

धार्मिक दृष्टिकोण से यह अधिकार कई विधि ग्रंथों में वर्जित है, परन्तु भारत में इस विचार में काफी अंतर था कि क्या इस विषय पर धार्मिक तथा कानूनी निषेध समान रूप से लागू थे? यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि यदि कोई ब्राह्मणवादी सिद्धान्त लागू करने के लिए प्राचीन विधि ग्रंथों का सहारा लेता है तो दत्तक ग्रहण के औपचारिक्ता का विषय में यह अधिकार अत्यधिक विस्तृत रूप से पाता है और यह सभी सवालों से परे है कि कई वर्ष पश्चात् इनमें से कई विधि नियम अप्रचलित या समाप्त हो गए है। इस मुकदमें में यह निर्णय लिया गया कि इकलौता पुत्र हिन्दू विधि के अनुसार अमान्य नही है। परन्तु एक प्रश्न यह भी शामिल था कि दत्तकयज्ञ बाम्बें प्रेसीडेंसी में द्विज वर्गों के बीच दत्तक ग्रहण की वैधता के लिए आवश्यक है? हालाँकि उनके अधिकार की दृष्टि से वर्तमान मामले में तथा इस बिन्दु पर किसी भी तानाशाही को रद्द करने या उस विषय पर मोटे तौर पर यह प्रश्न नही किया गया।[10] इस सम्बंध में एक अन्य मुकदमें को उदाहरण के रूप में लिया गया जो गोविंद अय्यर बनाम दोरासामी का था इस मुकदमें में मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ ने अपने फैसले में यह माना गया कि यह सिद्धान्त भारत में बड़े पैमाने पर लागू होता है।[11] एक अन्य मुकदमा जो वीध0 सिंगम्मा बनाम विंजामुरी वेंकटचार्लू का था, इस मुकदमें में भी यही सिद्धान्त दोहराया गया। इन दोनो मुकदमें के न्यायिक निर्णयों मूल्यवान माना गया क्योंकि इन मुकदमों में दत्तक ग्रहण के सम्बंध में द्विज तथा शूद्र वर्णो अधिकारों का सावधानी पूर्वक अध्ययन किया गया है और पुष्टि की गई है कि दक्षिण–भारत में ब्राह्मणों के बीच वैध गोद लेने के लिए दत्तकयज्ञ या अनुष्ठान आवश्यक नही है।[12] कुछ निश्चित मामलों में यह भी कहा गया कि एक ही गोत्र के भीतर दत्तक ग्रहण के मामले में इस प्रकार का अनुष्ठान अनावश्यक है जिसकी पुष्टि एक मुकदमें द्वारा की गई जो बालूबाई गोविंद काशीनाथ का है इस मुकदमें के निर्णय में कहा गया कि "बम्बई प्रेसिडेंसी में ब्राह्मण वर्गों में दत्तक होम या यज्ञ का अनुष्ठान का सम्पादन भाई के बेटे को गोद लेने की वैधता के लिए आवश्यक नही है।" यह न्यायालयीय आदेश, सम्बंधों की निकटता के आधार पर नही था बल्कि गोत्र के पहचान के व्यापक आधार पर था। इस सम्बंध में मि0 कोलब्रुक की पुस्तक में मिताक्षरा के श्लोक (2.5) की इस प्रकार व्याख्या की गयी है "गोत्रज से एक ही सामान्य परिवार से सम्बंधित व्यक्तियों के एक सामान्य नाम द्वारा अलग–अलग पहचान होता है। यह रोमन कानून के जैसा ही है।"[13] इस बिन्दु पर एक अन्य प्रश्न जो शूद्र जाति के संदर्भ में है वह यह है कि क्या शूद्र जाति में गोद लेने के लिए दत्तक होम की आवश्यक्ता है? इस प्रश्न का उत्तर स्ट्रेंज ने अपने हिन्दू विधि के पुस्तक में दिया है, जिसमें यह कहा गया है कि एक शूद्र के मामले में औपचारिक गोद लेने में यह आवश्यक नही हो सकता है, क्योंकि दत्तक यज्ञ द्वारा दत्तक पुत्र को उसके दत्तक पिता के प्राकृतिक गोत्र के रूप में प्रस्तुत किया जाता है परन्तु शूद्रों का कोई गोत्र नही होता है। उनके अनुसार उपनयन संस्कार के अनुष्ठान या जनेऊ को धारण करने में यह निर्धारित किया गया है कि जिस बालक का उपनयन संस्कार किया गया है उसके दत्तक ग्रहण की अपात्रता के विषय में भी यह बहुत विवादित है कि इस प्रकार का बालक एक ही गोत्र या परिवार का होना चाहिए। यदि वह भिन्न गोत्र या परिवार का होगा तो ऐसा बालक दत्तक ग्रहण के लिए अपात्र होगा। इसी प्रकार एक ही गोत्र के दत्तक ग्रहण में दत्तक यज्ञ का अनुष्ठान होना चाहिए परन्तु यह आवश्यक नही है।"[14]

इस प्रकार से इस विषय पर हम यह देख सकते हैं कि कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने शूद्रों के मामले में बिना किसी पूजा–पाठ के, दत्तक ग्रहण को वैध माना। स्ट्रेंज ने अपने हिन्दू विधि की पुस्तक में पृष्ठ संख्या 87 में प्रतिवेदित मामले में दत्तक ग्रहण के अवसर

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

पर आमतौर पर ब्राह्मणों के मध्य प्रचलित समारोहों का वर्णन किया है, और शूद्रों के संदर्भ में कहा गया है कि इस प्रकार का कोई भी यज्ञ करने की आवश्यक्ता नही है। पाश्चात्य विधिवेत्ता कोलब्रुक का मानना था कि शूद्रों के बीच दत्तक ग्रहण में अनुष्ठान की आवश्यक्ता नही है इसलिए अपीलकर्ताओं द्वारा केवल इसका आग्रह किया जा सकता है कि इस प्रकार की व्यवस्था ब्राह्मण पुजारी के आजीविका के लिए दत्तकमीमांसा के खण्ड 5 श्लोक 29 में तथा दत्तकचन्द्रिका के खण्ड 2 श्लोक 14 में की गई है। यह भी माना गया कि इस प्रकार के अनुष्ठान केवल नैतिकता को बढ़ावा देने के रूप में देखे जा सकते हैं। न्यायायिक समिति के लार्ड्स द्वारा पहले से ही उद्धृत एक मामले में कहा गया है कि ''द्विजों के बीच दत्तक ग्रहण में अनुष्ठान का रिवाज सामान्य है। अभी तक यह मान्यता थी कि दत्तकग्रहण में इस प्रकार की भूल दत्तकग्रहण को अमान्य कर देती है। यह एक जाल के रूप में औपचारिक कानून को और मजबूत करेगी और दत्तक ग्रहण के मामले में जबरन इस रिवाज को प्रोत्साहित करेगी। इन मुकदमों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि औपनिवेशिक काल में अदालती मुकदमों में न्यायधीशों द्वारा दत्तक ग्रहण के सम्बंध में दिए गए फैसलें में जहाँ द्विज वर्गों के लिए अनुष्ठान कुछ हद तक आवश्यक माना गया वहीं पर यह निर्णय भी दिया गया कि शूद्रों के बीच दत्तक ग्रहण के लिए दत्तक यज्ञ आवश्यक नही है सिर्फ लेना और देना ही पर्याप्त है। इस प्रकार से इस तरह का नियम द्विज तथा शूद्र वर्ण के बीच विभेद के लिए एक मानक के रूप में स्वीकार किया गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वी0 सुब्रह्मण्यम अय्यर बनाम रत्नवेलु चेट्टी व बारह अन्य दिनांक 04 मई 1917 I.L.R. 41 Mad. 44मद्रास उच्च न्यायालय
2. जोगरनाथ गिर बनाम शेर बहादुर सिंह 28 फरवरी(1939) इलाहाबाद उच्च न्यायालय।
3. राजकुमार लाल बनाम बिसेसर दयाल 4 मार्च 1884 कलकत्ता उच्च न्यायालय
4. भगवान सिंह बनाम भगवान सिंह माइनर अण्डर 27 जून 1895 बम्बई उच्चन्यायालय।
5. सुब्बाराव हम्बीराव पाटिल बनाम राधा हम्बीराव पाटिल 26 जनवरी 1928 बम्बई उच्च ध न्यायालय।
6. मरियम्मल बनाम गोविन्दम्मल 26 जुलाई 1984 मद्रास उच्च न्यायालय।
7. John D. Mayne- A Treatise on Hindu Law And Usage, Page no. 188, Edition- 11, (1892), Publised by- Higginbotham and Co.,London.
8. श्री बालासुगुरूलिंगस्वामी बनाम श्री बालासु रामलक्षमण 1899 26, 130 I.L.R. मद्रास उच्च न्यायालय।
9. गोविंद प्रसाद बनाम रिंदा बाई, 1924 I.L.R. 49, बम्बई उच्च न्यायालय पृष्ठ संख्या 551।
10. बाल गंगाधर तिलक बनाम श्री श्री निवास पण्डित 1915 17 Bom I.L.R. 527 बम्बई उच्च न्यायालय।
11. गोविंद अय्यर बनाम दोरासामी 1889 I.L.R. 11 मद्रास उच्च न्यायालय।
12. वी0 सिंग्मा बनाम विंजामुदी वेंकटचार्लू, (1868), I.L.R. 11 डंक 5, मद्रास उच्च न्यायालय।
13. बालूबाई गोविंद काशीनाथ (1889) I.L.R. 24 बम्बई उच्च न्यायालय।
14. Sir Thomas Strange- Hindu Law, Page no.- 104, Vol- 2, (1830), Published by- Parbury, Allen and Co. Leadenhall Street, London.

*****